एकविंशोऽध्यायः

वाल्मीकि जन्म वर्णन, वैशाख महत्व वर्णन

श्रुतदेव उवाच

ततस्तु विस्मितोभूत्वाशङ्खोव्याधसमन्वितः। कोभवानितितंप्राहदशैषाच कुतस्तव॥१॥
केन वाकर्मणासौम्य! मतिस्तवशुभावहा। अकस्मात्तेकथंमुक्तिरेतदाचक्ष्वविस्तरात्॥२॥

श्रुतदेव कहते हैं—तदनन्तर ऋषि शंख तथा व्याध यह देखकर विस्मित हो गये। शंख ने उस सर्प से पूछा—"तुम कौन हो? तुम्हारी यह दशा कैसे हो गयी? हे सौम्य! तुमने ऐसा कौन-सा कर्म किया था जिससे तुमको यह शुभ मुक्ति मिल गयी? हे साधु! तुम्हारी यह सर्पदेह मुक्ति कैसे हो सकी? विस्तार से यह कहो।"॥१-२॥

शङ्खेनैव तदापृष्टो दण्डवत्पतितोभुवि। प्रश्रयाऽवनतो भूत्वाप्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥३॥
अहंपुरा द्विजः कश्चित्प्रयागे बहुभाषणः। रूपयौवनसम्पन्नो विद्यामदसुगर्वितः॥४॥
धनाढ्यो बहुपुत्राढ्यः सदाऽहङ्कारदूषितः। कुसीदस्य मुनेः पुत्रोनाम्नारोचनइत्यहम्॥५॥

ऋषि शंख का यह वचन सुनकर उस दिव्य पुरुष ने दण्डवत् भूपतित होकर तथा विनायावनत होकर अंजलिबद्ध स्थिति में उत्तर दिया—"हे साधु! मैं पूर्वकाल में प्रयाग का निवासी था। मैं तब बहुभाषी ब्राह्मण था। मैं रूप, यौवन, विद्या, धन तथा अनेक पुत्र सम्पन्न था। मैं अहंकार दोष से युक्त था। मेरा नाम था रोचन"॥३-५॥

आसनं शयनं निद्रा व्यवायोऽक्षपरिक्रियाः।
लोकवार्ता कुसीदं वा व्यापारास्ते ममाऽभवन्॥६॥
तन्तुमात्राणि कर्माणि लोकनिन्दाविशङ्कितः। सदम्भश्च सदा कुर्वेनश्रद्धामेकदाचन॥७॥
दुर्बुद्धेर्ममदुष्टस्यकियत्कालोगतोऽभवत्। तदावैशाखमासेऽस्मिञ्जयन्तोनामवैद्विजः॥८॥
श्रावयामासतन्मासधर्मान्भागवतप्रियान्। तत्क्षेत्रेवासिनांपुण्यकर्मणाञ्चद्विजन्मनाम्॥९॥
नारीनराः क्षत्रियाश्चवैश्याः शूद्राःसहस्रशः। प्रातःस्नात्वासमभ्यर्च्यमधुसूदनमव्ययम्॥१०॥
कथां शृण्वन्तिसततं जयन्तेनसमीरिताम्। शुचिर्भूत्वामौनधरावासुदेवकथारताः॥११॥
वैशाखधर्मनिरता दम्भालस्यविर्जिताः। तांसभाञ्चप्रविष्टोऽहं कौतुकाच्चदिदृक्षया॥१२॥
सोष्णीषेण मया मूर्ध्ना नमस्कारोऽपि न कृतः।
ताम्बूलञ्च मुखे कृत्वा कञ्चुकञ्च मया धृतम्॥१३॥

"आसन, शयन, निद्रा, द्यूतक्रीड़ा, स्त्रीसंसर्ग, लोकवार्त्ता तथा कुशीद ग्रहण (व्याज लेना) मेरा कार्य था। मुझे लोक निन्दा का कोई भय नहीं था। मैं दम्भयुक्त होकर मैं समस्त सूक्ष्म कर्म अवश्य करता था, तथापि उन सब कार्य के प्रति मुझमें लेशमात्र श्रद्धा नहीं थी। क्रमशः मेरी बुद्धि अत्यन्त कलुषित हो गयी। अनेक

कुत्सित कर्मों का आचरण करते-करते मेरा कुछ समय कट गया। वहां तदनन्तर वैशाखमास में एक द्विज आये। उनका नाम जयन्त था। उन्होंने भागवतप्रिय वैशाखधर्म का वर्णन किया। वे जहां बैठकर धर्मचर्चा कर रहे थे, वहां उस क्षेत्र में निवास करने वाले पुण्यात्मा ब्राह्मणों का आश्रम था। क्षत्रिय-वैश्य तथा शूद्रजातीय मनुष्य वहां आकर उन जयन्त विप्र द्वारा कहे जा रहे वैशाख माहात्म्य को नित्य सुनते थे। सभी पवित्र, समाहित, चित्त तथा मौनी होकर वासुदेव कथा में रत थे। उनमें दम्भ नहीं था। वे सभी वैशाख धर्म तत्पर थे। यह सब घटना देखकर मुझे कुतूहल हो गया। मैंने उस सभा को देखने हेतु वहां प्रवेश किया। मेरे मस्तक पर पगड़ी बंधी थी। अतः मैंने प्रणाम नहीं किया। मेरी रुचि तो लौकिक बातों में अधिक थी। मैंने शरीर पर वस्त्र धारण किया था। मेरे मुख में ताम्बूल भरा था।।६-१३।।

कथाविक्षेपमचरं लोकवार्ताभिरञ्जनात्। सर्वेषां चित्तचाञ्चल्यभभूद्वैलोकवार्तया॥१४॥
क्वचिद्वासःप्रसार्याहंक्वचिन्निन्दन्क्वचिद्धसन्। एवंकालोमयानीतःकथायावत्समाप्यते॥१५॥
पश्चात्तेनैव दोषेण सद्योऽल्पायुर्विनष्धीः। सन्निपातेन पञ्चत्वं प्राप्तोऽहञ्चपरे दिने॥१६॥

मैं जब ताम्बूल चबाते वहां पहुंचा, इससे उस पुण्यकथा में विघ्न पड़ गया। मैं उस सभा में बैठकर लौकिक बातें करने लगा। इस प्रकार से श्रोताओं में चांचल्य आया। तदनन्तर कथा जब समाप्त हो गई तब तक कभी मैं वस्त्र हिलाता तो कभी मैं धर्मकथा की निन्दा करता, कभी अट्टहास करता। इस प्रकार समय व्यतीत होता गया तथा अपने इस दुष्कर्म के कारण मेरी आयु तथा बुद्धि का नाश हो गया। सन्निपात के आक्रमण के कारण मैं अगले ही दिन मृत हो गया।।१४-१६।।

तप्तसीसजलैः पूर्णं निरयञ्च हलाहलम्। प्राप्यभुक्त्वा यातनाञ्च मन्वन्तानि चतुर्दश॥१७॥
युक्तेष्वथचक्षेषु तां चतुरशीतिभिः। क्रमाद्योनिषु जातोऽहमिदानीञ्चावसन्द्रुमे॥१८॥

मैंने चतुर्दश मन्वन्तर काल पर्यन्त तप्त शीशे की तरह उत्तप्त जलपूर्ण नरक में तथा हलाहल पूर्ण नरक में वास करके नाना यातना भोग किया। तदनन्तर मैं एक-एक करके ८४ लाख योनियों में घूमता अन्त में सर्पयोनि में जन्म लेकर इस वटवृक्ष के कोटर में रहने लगा।।१७-१८।।

दशयोजनविस्तीर्णे शतयोजनमुन्नते। व्यालोऽहं तामसः क्रूरः सप्तयोजनकोटरे॥१९॥
भूत्वा वसामि विप्रर्षे! कर्मणा बाधितः पुरा। अयुतञ्च समायातानिराहारस्यकोटरे॥२०॥
दैवात्तव मुखाम्भोजसमीरितकथामृतम्। श्रुत्वा चक्षुर्द्वयेनाहंसद्योध्वस्ताशुभोमुने॥२१॥
व्यालयोनिं विसृज्याऽहं दिव्यरूपधरः पुमान्।
प्राञ्जलिःमप्रणतो भूत्वा पादौ ते शरणं गतः॥२२॥
कस्मिञ्जन्मनि त्वंबन्धुर्नजानेमुनिसत्तम्। नमयोपकृतंक्वाऽपिसानुकम्पःकुतःसताम्॥२३॥
साधूनां समचित्तानांसदा भूतदयावताम्। परोपकारप्रकृतिर्न चैषामन्यथामतिः॥२४॥

यह वटवृक्ष दस योजन विस्तीर्ण तथा १०० योजन उन्नत था। हे विप्र! मेरा निवास करने वाला कोटर ही सात योजन का था। मैंने पूर्वकाल में जैसा कर्म किया था, उस कर्म से बाध्य होकर मैं तापस क्रूर सर्प होकर उस कोटर में वास कर रहा था। मैं निराहार होकर १०००० वर्ष तथा निवास कर रहा था। हे मुनिवर! आपके

मुखकमल से जो कथा रूपी अमृत बहिर्गत हो रहा था, अब भाग्यवशात् उसे सुनकर तथा आपका प्रत्यक्ष दर्शन पाकर मैं कलुष रहित हो गया। समप्रति मैं सर्पयोनि का त्याग करके दिव्यरूपी हो गया हूं। मैं हाथ जोड़कर प्रणत होकर आप की चरण की शरण ले रहा हूं। हे मुनिप्रवर! मैं नहीं जानता कि आप मेरे किस जन्म के बन्धु हैं। मैंने कभी किसी का उपकार नहीं किया तथा कभी साधुगण के प्रति भी अनुकम्पा नहीं किया। आपके जैसे समचित्त साधुव्यक्ति सतत् सर्वभूतों के प्रति अपनी दया का वितरण करते हैं, वे कभी भी अपनी परोपकारी प्रवृत्ति को नहीं छोड़ते। अतः विचार आता है कि आपकी ही कृपा से मेरा यह ज्ञानोदय हुआ है।।१९-२४।।

ममाद्याऽनुगृहाण त्वं यथा धर्मे मतिर्भवेत्।
न भूयाद्विस्मृतिः क्वाऽपि विष्णोर्देवस्य चक्रिणः॥२५॥
महतां साधुवृत्तानां सङ्गतिश्च सदा भवेत्।। दारिद्र्यमेकमेव स्यान्मदान्धपरमाञ्जनम्॥२६॥
इति तं बहुधा स्तुत्वा प्रणम्य च पुनः पुनः। प्राञ्जलिःप्रणतस्तरथौतूष्णीमेवतदग्रतः॥२७॥
शङ्खो दोर्भ्यां समुत्थाप्यपूर्णप्रेमपरिप्लुतः। पस्पर्श पाणिना चाङ्गंशन्तमेनगताध्वसः॥२८॥
चक्रे चोऽनुग्रहं तस्मिन्दिव्यरूपधरे द्विजे। प्राहतंकृपयाऽऽविष्टोभाविवृत्तान्तमञ्जसा॥२९॥
द्विज! त्वं मासमाहात्म्यश्रवणाच्च हरेरपि।
माहात्म्यश्रवणात्सद्योविध्वस्ताऽखिलबन्धनः॥३०॥
अतिहायकलङ्कञ्च क्रमाद्गत्वापुनर्भुवि। दशार्णे विषमे पुण्ये भविता त्वं द्विजोत्तमः॥३१॥

"हे साधु! अब आप मुझ पर प्रसन्न हो जाईये। मेरी धर्म में मति बनी रहे। चक्रधारी भगवान् विष्णु का कभी भी मेरे हृदय का त्याग न करें। मैं सतत् पवित्र चरित्र महात्मा साधुओं का साथ प्राप्त करूं। दारिद्र ही मदान्ध लोगों के नेत्र का उत्तम अंजन है। मैं सदा दरिद्रता युक्त ही रहूं।" उसने इस प्रकार महर्षि शंख का स्तव करके उनको पुनः-पुनः प्रणाम किया तथा उनके समक्ष मौन होकर बैठ गया। उसका स्तव सुनकर प्रेमाप्लुत ऋषि ने उसे निर्भीक दिव्य पुरुष को उठाया तथा स्निग्धस्पर्श से उसके शरीर का स्पर्श किया। मुनि ने उसके प्रति कृपाप्रदर्शन करके उसके भावी वृत्तान्त को कहकर उस दिव्यरूपधारी व्यक्ति के प्रति विशेष अनुग्रह प्रदर्शित किया। तदनन्तर शंख ने कहा—"हे द्विज! यहां हरि के प्रिय वैशाखमास माहात्म्य के श्रवण से तत्काल तुम्हारा कर्मबन्धन छिन्न हो गया। तुम निष्कलङ्क हो गये। अब तुम पृथिवी पर जन्म लेकर पुण्यमय दशार्ण देश में द्विजोत्तम रूपेण निवास करोगे।"।।२५-३१।।

वेदशर्मेति विख्यातः सर्ववेदविशारदः। तत्रतेभविताजातिस्मृतिरात्यन्तिकीशुभा॥३२॥
तथा स्मृतानुबन्धस्त्वं त्यक्तसर्वेषणः शुभः।
करोषि सकलान्धर्मान्वैशाखोक्तान्हरिप्रियान्॥३३॥
निर्द्वन्द्वोनिःस्पृहोऽसङ्गोगुरुभक्तोजितेन्द्रियः। सदाविष्णुकथालापोभवितातत्रजन्मनि॥३४॥
ततःसिद्धिंसमाप्याऽथविध्वस्ताऽखिलबन्धनः। प्राप्नोषिपरमंधामयोगैरपिदुरासदम्॥३५॥
माभैषीःपुत्र! भद्रंतेभवितामत्प्रसादतः। हास्याद्भयात्तथाक्रोधाद्द्वेषात्कामादथाऽपिवा॥३६॥

स्नेहाद्वा सकृदुच्चार्य विष्णोर्नामाऽघहारि च।
पापिष्ठा अपि गच्छन्ति विष्णोर्धाम निरामयम्।।३७।।

तुम्हारा नाम वेदशर्मा प्रसिद्ध होगा। तुम सर्ववेदविशारद होगे। इस जन्म में तुम्हारी पूर्वजन्मस्मृति जाग्रत रहेगी। इस स्मृति के प्रभाव से तुम्हारे मन में किसी प्रकार की कामना को स्थान नहीं मिलेगा। तुम मधुसूदन को प्रिय वैशाख मास में शास्त्रोक्त समस्त धर्म का आचरण करोगे। तुम गुरुभक्त तथा जितेन्द्रिय रहोगे। तुम्हारे मन में द्वन्द्व, स्पृहा तथा (विषय) सङ्ग नहीं होगा। इस जन्म में तुम विष्णुकथा का आलाप करोगे। इसी जन्म में तुम्हारे समस्त कर्मबन्धन छिन्न होंगे तथा तुमको सिद्धि प्राप्त होगी। हे पुत्र! भयरहित हो जाओ। जो योगिगण के लिये भी दुर्लभ परमपद है, उसे तुम प्राप्त करोगे। मेरी कृपा से तुम्हारा मंगल हो। हे वत्स! हास्य में, भय-क्रोध-द्वेष-काम किंवा स्नेह प्रयुक्त हो, पापीगण भी एक बार हरि के पापहारी नाम का श्रवण करने से विष्णु के निरामय धाम में जाने में समर्थ हो जाते हैं।।३२-३७।।

किमु तच्छ्रद्धया युक्ता जितक्रोधा जितेन्द्रियाः।
दयावन्तः कथां श्रुत्वा गच्छन्तीति द्विजोत्तम!।।३८।।

हे द्विजोत्तम! श्रद्धायुक्त, जितेन्द्रिय, दयावान् तथा क्रोधरहित मानवगण हरिनाम श्रवण करके विष्णु के परमपद की प्राप्ति कर लेते हैं। इस विषय में अधिक क्या कहूं।।३८।।

केचित्केवलया भक्त्या कथालापैकतत्पराः।
सर्वधर्म्मोज्झिता वाऽपि यान्ति विष्णोःपरम्पदम्।।३९।।
द्वेषादिना न भक्त्या वा केचिद्विष्णुमुपासते। तेऽपियान्तिपरंधामपूतनेवासुहारिणी।।४०।।
महद्भिःसङ्गतोनित्यंवाग्विसर्गस्तदाश्रयः। मुमुक्षणाञ्चकर्तव्यःसःविधिःश्रुतिचोदितः।।४१।।
स वाग्विसर्गो जनताऽघविप्ललो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्तिसाधवः।।४२।।
यः कष्टसेवां न च काङ्क्षते विभुर्न वा समं भूरि न रूपयौवने।
स्मृतः सकृद्गच्छति धाम भास्वरं कम्वा दयालुं शरणं व्रजेत।।४३।।

इसी प्रकार से यदि कोई भक्ति के साथ केवल कथा में ही रत है अथवा कोई अन्य सब धर्मक्रिया का त्याग करके केवल विष्णुमहिमा को सुनता है, ये सभी विष्णु के परमपद का लाभ करते हैं। कोई-कोई मानव अन्याय देवगण से द्वेष करके केवल भक्ति के साथ विष्णु की ही उपासना करता है, ऐसा मानव भी पूतना की ही तरह जीवन त्याग करके विष्णु के परमपद का लाभ करता है। वेद कहते हैं कि मुमुक्षुगण महात्मागण से सतत् संसर्ग, विष्णु के वाक्यों का वर्णन, उनका आश्रय, यह सब ग्रहण करते हैं। जिनके वाक्य जनसाधारण के पापों का हरण करते हैं, जिनके माहात्म्य की प्रकाशक श्लोकावली अर्थहीन वाक्यवाली होकर भी पापीगण का पाप दूर करती है, जिनके अनन्त नाम यशपूर्ण हैं, साधुजन सतत् उसी कृष्णनाम का कीर्त्तन, श्रवण तथा ग्रहण करते हैं। जो भक्तगण की कष्टमय सेवा की आकांक्षा नहीं करते, प्रचुर आसन तथा रूपयौवन जिनको अभीष्ट नहीं है, जिनका एक बार स्मरण करने से भक्तगण भास्वर विष्णुधाम में गमन करते हैं, ऐसे दयालु विष्णु की शरण कौन ग्रहण नहीं करेगा?।।३९-४३।।

तमेव शरणं याहि नारायणमनामयम्। भक्तवत्सलमव्यक्तं चेतोगम्यं दयानिधिम्।।४४।।
कुरु सर्वानिमान्धर्मान्वैशाखोक्तान्महामते!। तेन तुष्टाजगन्नाथःशर्म तेच विधास्यति।।४५।।
इत्युक्त्वा विरराम्ाऽथव्याधं दृष्ट्वा सुविस्मितः। सदिव्यःपुरुषःप्राहपुनस्तंमुनिपुङ्गवम्।।४६।।

"हे साधु! वे विष्णु भक्तवत्सल हैं। वे अव्यक्त, चित्त से गम्य तथा दयानिधि हैं। तुम उन अनामय नारायण की शरण ग्रहण करो। हे महामति! तुम वैशाखोक्त इस धर्म का आचरण करो। वैशाखधर्म के प्रभाव से वे जगत्पति तुम्हारा श्रेयविधान करेंगे।" ऋषि शंख ने यह कहा तथा मौन हो गये। तब उस दिव्य पुरुष ने वहां व्याध को देखकर विस्मित होकर ऋषि प्रवर शंख से कहने लगे।।४४-४६।।

दिव्यपुरुष उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि त्वया शङ्ख! दयालुना।
दिष्ट्या गता मे दुर्योनिर्यामि चैव पराङ्गतिम्।।४७।।
इति तञ्च परिक्रम्य ह्यनुज्ञातो दिवं ययौ। ततःसायमभूद्राजञ्छङ्खोव्याधेनतोषितः।।४८।।
सन्ध्यांसायन्तनीं‌कृत्वारात्रिशेषंनिनायच। नानाख्यानैश्चभूषानांदेवानाञ्चमहात्मनाम्।।४९।।

दिव्य पुरुष कहता है—"हे शंख! आप दयावान हैं। आपका दर्शन पाकर मैं धन्य तथा अनुगृहीत हो गया। भाग्यवशात् ही मुझे आपका दर्शन मिला है। इसी कारण मेरी दुष्टयोनि दूर हो गयी। मैंने परमगति भी पा लिया।" दिव्यपुरुष ने यह कहकर ऋषि की प्रदक्षिणा किया। वह ऋषि की अनुमति लेकर स्वर्ग चला गया। हे राजन्! तदनन्तर सायंकाल में ऋषि शंख ने व्याध द्वारा विशेष रूप से आप्यायित होकर सायं-सन्ध्या की उपासना किया। महात्मा शंख ने राजाओं, देवगण तथा अवतारों की लीला का वंशवर्णन प्रभृति विविध उपाख्यान वर्णन करते हुये वह रात्रि व्यतीत किया।।४७-४९।।

लीलाभिरवताराणां दृष्टगोष्ठिभिरेव च। ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय पादौप्रक्षाल्यवाग्यतः।।५०।।
ध्यायंश्च तारकम्ब्रह्म कृत्वा शौचादिसत्क्रियाम्।
वैशाखे मेषगे सूर्ये स्नात्वा प्राक्च भगोदयात्।।५१।।
कृत्वा सन्ध्यादिकं कर्म तथा सन्तर्प्य चाऽखिलान्।
व्याधमाहूय हृष्टात्मा मूर्ध्नि प्रोक्ष्य निरीक्ष्य च।।५२।।
रामेति द्व्यक्षरं नामददौवेदाधिकं शुभम्। विष्णोरेकैकनामाऽपिसर्ववेदाधिकंमतम्।।५३।।
तेभ्यश्चाऽनन्तनामभ्योऽधिकं नाम्नांसहस्रकम्। तादृङ्नामसहस्रेणरामनामसमंमतम्।।५४।।
तस्माद्रामेति तन्नामजपव्याध! निरन्तरम्। धर्मानेतान्कुरुव्याध! यावदामरणान्तिकम्।।५५।।
ततस्ते भविता जन्म वल्मीकस्य ऋषेःकुले।
वाल्मीकिरिति नाम्ना च भूमौ ख्यातिमवाप्स्यसि।।५६।।
इति व्याधं समादिश्य प्रतस्थे दक्षिणां दिशम्।
व्याधोऽपि तं परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः।।५७।।

किञ्चिद्दूरानुगो भूत्वा सरुदन्विरहातुरः। यावद्दृष्टिपथं यावत्पश्यंस्तस्यगतिंपुनः॥५८॥
पुनर्निववृते कृच्छ्रात्तमेव हृदि चिन्तयन्। वनं निर्माय तन्मार्गेप्रपांकृत्वासुनिर्मलाम्॥५९॥

ऋषि शंख ने ब्राह्ममुहूर्त में उठकर मौनी रहकर पादप्रक्षालन किया तथा शौचादि क्रिया का सम्पादन करके तारकब्रह्म का ध्यान करने लगे। तदनन्तर उन्होंने मेष राशीस्थ सूर्ययुत वैशाख में सूर्योदय के पूर्व स्नान, सन्ध्या-वन्दनादि, देव-ऋषि-पितर तथा अखिल लोकों का तर्पण किया। तत्पश्चात् उन्होंने व्याध को बुलाकर प्रसन्न अन्तःकरण से उसका मस्तक जलधारा से प्रक्षालित किया। तदनन्तर वेदसार शुभप्रद 'राम' यह दो अक्षर का मन्त्र उसे अर्पित किया। तत्पश्चात् महर्षि शंख कहने लगे—"हे व्याध! विष्णु के एक-एक नाम देवताओं के समस्त नामों की तुलना में श्रेष्ठ हैं। उनका सहस्रनाम देवों के अनन्त नामों से श्रेष्ठ है। ऐसे सहस्रनाम के समान एक राम का नाम है। अतएव तुम निरन्तर राम नाम का जप करो। हे व्याध! जब तक तुम्हारी मृत्यु न हो जाये, तब तक इन सब धर्म का अनुष्ठान करो। इसके पश्चात् इस धर्म के प्रभाव से तुम वल्मीक ऋषि के कुल में जन्म लोगे। तुम वाल्मीकि नाम से भूतल पर प्रसिद्ध हो जाओगे।" ऋषि शंख व्याध को यह आदेश देकर दक्षिण देश चले गये। व्याध ने भी उनकी प्रदक्षिणा करके पुनः-पुनः प्रणाम किया था तथा कुछ दूर गुरु के पीछे चलते हुये उनको विदा करते समय विरहाकुल होकर रोदन करने लगा। जब वे जाने लगे तब जहां तक वे दिखलाई पड़े, वह उनको ही सश्रद्ध भाव से देखता रहा। जब ऋषि शंख उसकी नेत्रों से ओझल हो गये, तब व्याध उनका हृदय से चिन्तन करते हुये अति कष्टपूर्वक वापस लौटा। तदनन्तर उसने वैशाखधर्म पालन करते हुये मार्ग में सुन्दर जल वाली बावली बनवायी।।५०-५९।।

अतियोग्यानिमान्धर्मान्वैशाखोक्तांश्चकार ह।
वन्यैः कपित्थपनसैर्जम्बूचूतादिभिः फलैः॥६०॥
मार्गगानां श्रमार्तानामाहारं परिकल्पयन्। उपानद्भिश्चन्दनैश्च छत्रैश्च व्यजनैरपि॥६१॥
वालुकास्तरणोपेतच्छायाभिश्च क्वचित्क्वचित्।
आजहाराथ पान्थानां श्रमं स्वेदोद्भवं तथा॥६२॥
प्रातः स्नात्वा दिवारात्रं जपन्नामेति वै मनुम्।
व्याधजन्मनि नामाऽसौ वल्मीकस्य सुतोऽभवत्॥६३॥

वह वन में निवास करते हुये वैशाख योग्य धर्मों का आचरण करने लगा। वह वनोत्पन्न कपित्थ, पनस, खजूर, जम्बू तथा आम्रादि फल द्वारा श्रम से थके लोगों को आहार प्रदान करता था। मार्ग में कहीं श्रमार्त्त पथिकों को पादुका, चन्दन, छत्र तथा पंखा प्रदान करता था। कहीं उत्तप्त बालुका भूमि पर छाया का निर्माण करता जहां पथिकों का मार्ग श्रम से उत्पन्न स्वेद समाप्त होता था। यह व्याध प्रातःस्नान करके अहोरात्र 'राम' नाम का जप करता रहता था। वह व्याध अगले जन्म में वल्मीक का पुत्र हुआ।।६०-६३।।

कृणुर्नाम मुनिः कश्चित्तस्मिन्नेव सरोवरे। तपो वै दुस्तरं तेपे वाह्यव्यापारवर्जितः॥६४॥
वल्मीकमभवद्देहे तस्य कालेन भूयसा। वल्मीक इति तं प्राहुरतो वै मुनिपुङ्गवम्॥६५॥
पश्चात्तपोविरामान्तेकृणौस्मृतिपथंगते। स्त्रियोऽनुस्मरतोराजन्स्खलितंचेन्द्रियंमुनेः॥६६॥

जग्राह शैलुषी काचित्तस्यां जज्ञे वनेचरः। वाल्मीकिरिविख्यातोभुवनेषुमहायशाः।।६७।।
यो वै रामकथांदिव्यांस्वैःप्रबन्धैर्मनोहरैः। लोकेप्रख्यापयामासकर्मबन्धनिकृन्तनीम्।।६८।।

हे राजन्! कृणु नामक एक मुनि वाह्य व्यापार से रहित होकर वहां एक सरोवर तट पर दुश्चर तपःश्चरण कर रहे थे। उन्होंने अनन्त काल तक तप किया था। क्रमशः दीमकों ने उनकी देह पर बांबी बना लिया। तभी उस मुनिश्रेष्ठ को सभी वल्मीक कहने लगे। हे राजन्! जब उन्होंने तपस्या से विराम पाया, तब उन्होंने रमणी का स्मरण किया जिससे उसका वीर्य स्खलित हो गया। एक शैलूषी ने उसे ग्रहण किया (शैलूषी का अर्थ आप्टे शब्दकोष में है संगीत से व्यवसाय चलाने वाली)। उस शैलूषी के उदर से एक वनेचर व्याध ने जन्म लिये। यही वनेचर पृथिवी पर वाल्मीकि कहलाया। इन्होंने अपने रचित प्रबन्ध द्वारा दिव्य कथायुक्त कर्मबन्ध काटने में समर्थ त्रैलोक्य प्रसिद्ध 'रामायण' का प्रणयन किया।।६४-६८।।

श्रुतदेव उवाच

पश्य वैशाखमाहात्म्यं भूपालाद्याऽपि भूतिदम्।
व्याधोऽप्युपानहौ दत्त्वा ऋषित्वं प्राप दुर्लभम्।।६९।।
य इदं परमाख्यानं पापघ्नं रोमहर्षणम्। शृणुयाच्छ्रावयेद्वाऽपि न भूयःस्तनपोभवेत्।।७०।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीष-सम्वादे व्याधोपाख्याने वाल्मीकेर्जन्मकथनंनामैकविंशोऽध्यायः।।२१।।

श्रुतदेव कहते हैं—हे राजन्! वैशाख का प्रभाव देखो! यह वैशाखमास अभी भी भूतल पर सम्पत्प्रद है। व्याध ने पादुका की जोड़ी दान करके दुर्लभ ऋषित्व लाभ किया। जो मानव पापघ्न तथा रोमांचित करने वाले इस परम उपाख्यान को सुनाते अथवा श्रवण करते हैं, उनको पुनः संसार में जन्म लेकर मातृस्तनपान नहीं करना पड़ता।।६९-७०।।

।।एकविंश अध्याय समाप्त।।